४० डलबर्ग रोड, लन्दन
मई १६, २००३

सन्देश संख्या ५५
पतंजलि के योगसूत्र – समाधिपाद

समाधिपाद

मुक्ति प्रथम सोपान है।

मुक्ति तो शुरूआत है। यह किसी उद्यम या प्रयत्न या किसी भी रूप में अहंकार की यात्रा का अन्तिम परिणाम नहीं है। यह देखने और समझने की ऊर्जा है, न कि चाहने, पाने, खोजने और बँधने की। प्रबोध किसी पूर्वधारणा या पूर्वनिश्चित अभिधारणा में उलझना नहीं है। ''यह है'' – न कि ''यह होगा'' या ''यह होना चाहिए''। मन का प्रयोग करते हुए मन से मुक्ति के लिए किया गया प्रयास वास्तव में इस मुक्ति का नितान्त निषेध है। इसे समझने के योग्य होना इस मुक्ति की सर्वोच्च सम्पुष्टि या पहचान है। स्वयं के लिए स्वयं के द्वारा इस मुक्ति का प्रत्यक्षबोध करने हेतु मुक्ति से सम्बन्धित समस्त खोजों एवं विरोधाभासों का समाप्त होना आवश्यक है। मुक्त अस्तित्व देहमुक्त तथा निर्मन की प्रज्ञा एवम् ऊर्जा में है, न कि बुद्धि और अहंकार में।

१. अथ योगानुशासनम् ।
योग (भासमान आत्मा को सूक्ष्म रूप से अनुशासित कर यथार्थ आत्म तत्व से संयुक्त होना) वर्तमान/विद्यमान है अर्थात् यह जीवन के अस्तित्व की ऊर्जा में है न कि अतीत और भविष्य में, जहाँ मन का निवास है। मन जीवन की अभिव्यक्ति है, किन्तु जीवन का सुखबोध या उल्लास नहीं। मन जीवन का बन्धन और बोझ है, इसका परमानन्द और मंगलमयता नहीं।

२. योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ।
मन के लक्षणों तथा प्रवृत्तियों (गुणों) की निरन्तरता में बीच–बीच में रूकावट (अन्तराल) वैयक्तिक बुद्धि को सार्वभौम चित्शक्ति के साथ संयोग की ओर ले जाता है।

३. तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् ।
इन अन्तरालों का दर्शन ही दिव्य अथवा यथार्थ आत्मा अर्थात् अपने सहज स्वरूप में प्रतिष्ठित होने की दृष्टि है।

४. वृत्तिसारूप्यमितरत्र ।
इसके अतिरिक्त सब कुछ मन, विभेदकारी चित्तवृत्ति तथा इसके अपरूप और उपजात हैं।

५. वृत्तयः पञ्चतय्यः क्लिाऽक्लिाः ।
मन के पाँच घटक मनुष्य के दुःख और सुख के कारण हैं।

६. प्रमाण–विपर्यय–विकल्प–निद्रा–स्मृतयः ।
ये हैं –
१. प्रमाण
२. विश्वासबन्धन
३. विकल्प
४. जड़त्व, अक्रियता
५. स्मृति
स्मृति की आधारभूमि पर अन्य चार घटक अपना सानी पाते हैं। प्रमाण सबसे ऊपर है क्योंकि भ्रम और धोखा से दूर यह प्रत्यक्ष निष्कष और निगमन के कारण दुःखदायी नहीं है।

७. प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि ।
प्रत्यक्ष, बोध और उससे निकले निष्कष (निगमन) प्रमाण है।

८. विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम् ।
विश्वास पद्धतियाँ अनर्थकारी मोह और मतान्धता है क्योंकि वे मिथ्या ज्ञान एवं क्या होना चाहिए इसकी कल्पना और भ्रान्ति पर आधारित है।

९. शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः ।

विकल्प (मनोवैज्ञानिक न कि तकनीकी) सारहीन गतिविधियाँ हैं जो परम्परागत सांस्कृतिक और वाचिक क्रियाओं के क्रम एवम् अनुपात में घटित होती हैं।

१०. अभावप्रत्ययालम्बना वृत्तिर्निद्रा ।

प्रत्यक्षबोध का सहारा न लेने के कारण हम पूर्व धारणाओं और विरोधाभासों में फंस जाते हैं। यह सुस्त और सुप्त मन का आयाम है।

११. अनुभूतविषयासम्प्रमोषः स्मृतिः ।

स्मृति अतीत की अनुभूतियों को कैद कर लेती है। स्वाभाविक स्मृति मोहग्रस्त नहीं होती है। यह न तो अवरूद्ध होती है, न ही इसमें प्रभाव और अन्तर्ग्रस्तता जैसे कोई मनोवैज्ञानिक अवशेष ही रहते हैं।

१२. अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः ।

अनासक्ति में दृढ़ता वैराग्य है। वैराग्य आकषण एवं निकषण के चक्कर में नहीं फँसता। यह अन्ततोगत्वा विचारों के सतत प्रवाह (मन्थन) असतता और मन के लक्षणों व प्रवृत्तियों के संचरण में ठहराव की ओर ले जाता है।

१३. तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः ।

इस प्रकार दत्तचित्त एवं सतर्क होकर अनासक्ति की अवस्था में स्थित होवें।

१४. स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढभूमिः ।

अनासक्ति की यह प्रक्रिया दीर्घकाल तक निर्बाध समर्पण और भक्ति भाव से लगातार बनाये रखने पर दृढ़ता से स्थापित हो जाती है।

१५. दृानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम् ।

अनासक्ति (वैराग्य) का आविर्भाव पूर्ण मनोयोग (वंशीकार संज्ञा)
से होता है। यह ऐन्द्रिक विषयों से निर्लिप्तता (विषय वितृष्णा) अर्थात् प्रीतिकर या अप्रीतिकर ऐन्द्रिक अनुभवों को विषयासक्ति में परिवर्तित न करने का परिणाम है।

१६. तत् परं पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम् ।

तब गुणों (मन के वैश्यि) निर्लिप्तता की परिणति के रूप में परम चैतन्य (पुरूष) का बोध होता है।

१७. वितर्कविचारानन्दास्मितारूपानुगमात् संप्रज्ञातः ।

जब विश्लेषणात्मक चिन्तन और ध्यान परम आनन्दमय अद्वितीयता में अर्थात् बिना समनुरूप होने और बने घटित होता है तब चेतना में समाधि का उदय होता है।

१८. विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कारशेषोऽन्यः ।

मन के सतत मंथन में असतता का बोध सब प्रकार के अनुबन्धनों की समाप्ति (संस्कार शेषः अन्यः) का द्योतक है।

१६. भवप्रत्ययो विदेहप्रकृतिलयानाम् ।

मन की विशिताओं और प्रवृत्तियों (गुण अथवा प्रकृति) का लय होने पर देहमुक्त चैतन्य (चैतन्य या पुरूष) का प्रत्यक्ष बोध होता है।

२०. श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वक इतरेषाम् ।

गुणों का लय (सहजावस्था की ओर अग्रसर) होने के लिए निम्नांकित योग्यता आवश्यक है :–

१. श्रद्धा या समर्पण
२. ऊर्जा या ओज
३. स्मृति या बुद्धि
४. विकल्परहित प्रत्यक्षबोध या साम्यावस्था (समाधि प्रज्ञा)

२१. तीव्रसंवेगानामासन्नः ।

(सहजावस्था के लिए) एक गहन लालसा अब उत्पन्न होगी।

२२. मृदुमध्याधिमात्रत्वात्ततोऽपि विशेषः ।

यह लालसा मृदु से मध्यम से तीव्र और अत्यधिक अद्वितीयता एवम् उत्कष की ओर विकसित होती है।

२३. ईश्वर–प्रणिधानाद्वा ।
पूर्णता के प्रत्यक्ष और तत्काल बोध की ओर ले जाता है।

२४. क्लेशकमविपाकाशयैरपरामृः पुरुषविशेष ईश्वरः ।
पूर्णता में, दिव्यता परम चैतन्य (पुरूष विशेष) है जो कर्मफल की अपेक्षाओं या बन्धनों से उत्पन्न दुःख से अप्रदूषित (अप्रभावित) रहता है। मन की विभक्त गतिविधियाँ दुःख हैं। पूर्णता और प्रज्ञा को मन छू नहीं सकते।

२५. तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम् ।
पूर्णता (अर्थात् निर्मन) में असीम (अप्रतिम), अखण्ड प्रत्यक्षबोध (बोध) का बीज है।

२६. पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ।
काल (मन) से मुक्त पूर्ण प्रत्यक्षबोध सभी का सर्वश्रे गुरू है।

२७. तस्य वाचकः प्रणवः ।
यदि ब्रह्माण्डीय चैतन्य (पुरूष या चैतन्यपूर्ण) के पूर्ण प्रत्यक्षबोध को कोई ध्वनि दी जा कती है तो वह मात्र ऊँ (प्रणव) ही हो सकती है।

२८. तज्जपस्तदर्थभावनम् ।
का उच्चारण हो सकता है तथा इसपर ध्यान भी किया जा सकता है।

२६. ततः प्रत्यक् चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च ।
चेतना का केन्द्रबिन्दु है जो (बहिर्मुखी प्रवृत्तियों से उत्पन्न) समस्त बाधाओं को पार कर जाता है।

३०. व्याधि–स्त्यान–संशय–प्रमाद–आलस्य–अविरति–भ्रान्तिदर्शन–अलब्धभूमिकत्व–अनवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः ।
पूर्ण प्रत्यक्षबोध के मार्ग में निम्नलिखित बाधायें हैं :

१. खराब स्वास्थ्य
२. सुस्ती या निष्क्रियता
३. संशय या आशंका
४. अव्यवस्थित गतिविधियाँ
५. आलस्य
६. लालसा
७. भ्रान्तिजनक या त्रुटिपूर्ण अवलोकन
८. मन की नीरवता अथवा ''निर्विचार'' या ''निर्मन'' (विचारहीनता या मनोविकृति नहीं) के आयाम में स्थित न रहना।
६. अस्थिरता

तनाव और मन की चंचलता

३१. दुःखदौर्म्मनस्याङ्गमेजयत्वश्वासप्रश्वासा विक्षेपसहभुवः ।
दुःखभोग, जो विभेदकारी चित्तवृत्ति (मन) के साथ–साथ रहते हैं, निम्नवत् हैं :–

१. दुःख
२. क्षोभ
३. शरीर के अंगों पर नियंत्रण का अभाव, हिस्टीरिया का उत्पन्न होना।
४. श्वास प्रश्वास का सुव्यवस्थित न होना।

३२. तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः ।
बिना किसी भटकाव के मुक्ति के मार्ग पर दृढ़ता से चलते रहना पूर्ण प्रत्यक्षबोध (मन से मुक्ति हेतु) के मार्ग में आनेवाली बाधाओं का प्रतिकारक है।

३३. मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावना–तश्चित्तप्रसादनम् ।

पूर्ण चैतन्य वास्तव में करुणा है जिसमें निम्नलिखित सम्मिलित हैंः–

१. सुख–दुःख, प्रीतिकर–अप्रीतिकर, सद्‌गुण–दुर्गुण के प्रति साम्यावस्था।
२. मैत्री
३. करुणा
४. हर्ष
५. त्याग

३४. प्रच्छदर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य ।
श्वास का नियमन भी स्थिरत्व और इस प्रकार पूर्ण चैतन्य की ओर ले जाता है।

३५. विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिबन्धनी ।
मानसिक बन्धन से मुक्ति (जिसकी परिणति ज्ञानेन्द्रियों को स्वाभाविक कार्य व्यापार में होती है) मन के विषयों के साथ आसक्ति तथा मोह की समाप्ति की ओर ले जाता है।

३६. विशोका वा ज्योतिष्मती ।
शोक की समाप्ति या अन्तः ज्योति (अन्तर्दृष्टि) भी काल (अर्थात् मन) से मुक्ति का पथ प्रशस्त करता है।

३७. वितरागविषयं वा चित्तम् ।
भौतिक वस्तुओं के संचय से विरक्ति भी पूर्ण चैतन्य (चैतन्य चित्त) है।

३८. स्वप्ननिद्राज्ञानालम्बनं वा ।
निद्रा और स्वप्न के वास्तविक स्वरूप की समझदारी की परिणति भी खण्ड चैतन्य से मुक्ति में होती है।

३६. यथाभिमतध्यानाद्वा ।
स्वयं की समझदारी और अन्तर्बोध के अनुसार ध्यान आवश्यक मुक्ति की ओर ले जाता है। (ध्यान की कोई पद्धति नहीं है)

४०. परमाणु परममहत्त्वान्तोऽस्य वशीकारः ।
ध्यान (जो उधारीकृत ज्ञान को स्वयं की जानकारी में परिवर्तित करता है) उच्चतम से निम्नतम प्रकृति की प्रत्येक घटना के संबंध में समझदारी विकसित करता है अर्थात् उसमें पारंगत बना देता है।

४१. क्षीणवृत्तेरभिजातस्येव मणेर्ग्रहीतृग्रहणग्राह्येषु तत्स्थतदञ्जनता समापत्तिः।
एक विवेकी पुरूष में जिसमें गुण और वृत्तियाँ क्षीण हो जाती हैं, इन्द्रियों के अनुभव की निष्कलंक शुद्धता विषयासक्ति (मन) से अछूता होने के कारण ज्ञाता और ज्ञेय उसी तरह एकात्मक लय बन जाते हैं जिस प्रकार एक पारदर्शी स्फटिक अपने आधान का वर्ण धारण कर लेता है।
समापत्ति शब्द जो कि प्रायः समाधि से प्रतिस्थापित होता है के अर्थ के बारे में एक संक्षिप्त टिप्पणी :
समापत्ति = सम+आपत्ति = समान/विकल्परहित+अलगाव (दूरी)।
इसका अभिप्राय है समस्त बहिर्मुखी अवधारणाओं से समान दूरी बनाये रखना। दूसरे शब्दों में साम्यावस्था में पूर्ण लय। विकल्परहित सचेतनता और विकल्परहित अलगाव के मध्य अन्तर यह है कि विकल्परहित सचेतनता में व्यक्ति बहिर्मुखता (बाह्य स्वरूप) में उपलब्ध रहता है जबकि 'समान दूरी' (अन्तःस्वरूप) में पूर्ण विलय को निर्दिष्ट करता है। अतः समापत्ति समाधि से प्रतिस्थापित की जा सकती है।

४२. तत्र शब्दार्थज्ञानविकल्पैः समीर्णा सवितर्का समापत्तिः ।
इसके पश्चात्, विकल्पों से उत्पन्न तथा शब्दों तथा उनकी व्याख्याओं एवम् उनसे जुड़ी अवधारणाओं व निष्कर्षों से निःसृत, छिछली एवं तार्किक चित्तवृत्ति का विलय हो जाता है।

४३. स्मृतिपरिशुद्धौ स्वरूपशून्येवार्थमात्रनिर्भासा निर्वितर्का ।

अपने विषय में सब प्रकार की छवियों की समाप्ति (स्वरूपशून्येव) तथा अनुबन्धनों से मुक्ति (स्मृति परिशुद्धों) की ओर ले जाता है। सवितर्क चित्तवृत्ति की समाप्ति की परिणति सत् के सूक्ष्म अनुरूप में होती है।

४४. एतयैव सविचारा निर्विचारा च सूक्ष्मविषया व्याख्याता ।
इस प्रकार मन और ''निर्मन'' के सूक्ष्म पक्षों को समझाया और समझा जाता है।

४५. सूक्ष्मविषयत्वं चालिङ्गपर्यवसानम् ।
इन सूक्ष्म विषयों की समझदारी मन (अलिङ्ग) के सभी रूपों और सूत्रों की समाप्ति की ओर ले जाता है।

४६. ता एव सबीजः समाधिः ।
इन सब प्रकार की मुक्ति में मन के बीज फिर भी बचे रहते हैं।

४७. निर्विचारवैशारद्येऽध्यात्मप्रसादः ।
''निर्मन'' (विशुद्ध चैतन्य) के उत्कष एवं कौशल की परिणति 'अन्यत्व' (अध्यात्म) को जानने के आशीर्वाद के रूप में होती है।

४८. तम्भरा तत्र प्रज्ञा ।
''निर्मन'' ब्रह्माण्डीय चित्शक्ति–अन्यत्व–त की प्रज्ञा से ओत–प्रोत रहती है।

४६. श्रुतानुमानप्रज्ञाभ्यामन्यविषया विशेषार्थत्वाद् ।
इस ऋत का अति विशिष्ट महत्व है। यह बौद्धिक विषयों या ज्ञान, जिसे मन प्रमाण और अनुमान के माध्यम से प्राप्त करता है, से परे है।

५०. तज्जः संस्कारोऽन्यसंस्कारप्रतिबन्धी ।
ब्रह्माण्डीय चित्शक्ति (त) विशुद्ध चैतन्य का जनक है और यह हमें अनुबन्धन व विखण्डन से मुक्त रखता है।

५१. तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधान्निर्बीजः समाधिः ।
मन के बीज से पूर्ण एवं बिना शर्त मुक्ति ही सभी परिणामों की परिणति है (साध्यों का साध्य है)।